स्नातकों का

परिचय तथा उपलब्धियाँ

दर्शन योग महाविद्यालय
आर्यवन, रोजड, पो० सागपुर,
जि. साबरकांठा, गुजरात-३८३३०७



ओ३म्

दर्शन योग महाविद्यालय

(तृतीय सत्र में अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियों का)



परिचय

तथा

उपलब्धियाँ

प्रकाशक

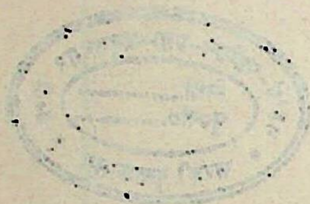
दर्शन योग महाविद्यालय

आर्य वन, रोज़ड, पो. सागपुर,

जि. साबरकांठा, गुजरात -३८३३०७

दुरभाष (०२७७४७)४२१७

प्रकाशक : दर्शन योग महाविद्यालय,
आर्य वन विकास क्षेत्र, रोजड़,
पत्रालय - सागपुर, जि. साबरकांठा
गुजरात - पिन - ३८३३०७



प्रकाशन तिथि : आश्विन २०५२
(सितम्बर १९९५)

प्रतियाँ - १०००

कोम्प्युटर कंपोज : आकृति ग्राफिक, कर्णावती, फोन : २७४८९७४.



आत्म निवेदन

परमेश्वर की महती कृपा, पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक के निर्देश में चलने वाले इस दर्शन योग महाविद्यालय के १० वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। विगत ९ वर्षों के काल में कश्मीर से लेकर केरल तक के, १२ प्रान्तों के ३० से भी अधिक योग्य ब्रह्मचारियों को यहाँ प्रवेश दिया गया। ब्रह्मचारियों ने स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की मान्यतानुसार वैदिक दर्शनों का अध्ययन, योग प्रशिक्षण, आर्ष सिद्धान्तों का परिज्ञान, निष्काम कर्म, यम-नियम के पालन आदि के माध्यम से यथा सामर्थ्य अपने जीवन का निर्माण किया। इन ब्रह्मचारियों ने यहाँ रहते हुए जो उपलब्धियाँ प्राप्त की, उनमें से कुछ का वर्णन, संक्षिप्त रूप से इस पुस्तिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

इससे पूर्व भी दो पुस्तकों में पूर्व के ब्रह्मचारियों की उपलब्धियाँ व परिचय यहाँ से प्रकाशित हो चुके हैं। इन उपलब्धियों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कराने का उद्देश्य निम्न हैं। १. सत्य इतिहास की रक्षा करना, २. महाविद्यालय के सहयोगी, हितैषी महानुभावों को यहाँ की प्रगति का परिज्ञान कराना ३. अन्य धार्मिक लोगों को उत्साह व प्रेरणा का मिलना ४. वैदिक धर्म तथा योग विद्या का देश-विदेश में प्रचार प्रसार होना, इत्यादि।

वर्तमान में भी विद्यालय में १० विद्यार्थी इस प्रकार अध्ययन कर रहे हैं। पिछले वर्ष से हमने यहाँ पर अष्टाध्यायी क्रम से संस्कृत भाषा, व्याकरण का भी अध्यापन प्रारंभ कर दिया है। वर्तमान में २ ब्रह्मचारी इसी क्रम से व्याकरण का अध्ययन कर रहे हैं।

इन तीन सत्रों में अब तक जो ब्रह्मचारी महाविद्यालय में अध्ययन कर चुके हैं, उनमें से अधिकांश ब्रह्मचारी देश के विभिन्न

प्रान्तों में गुरुकुलों का संचालन, संस्कृत भाषा, व्याकरण, दर्शन, उपनिषद् आदि का अध्यापन, योग प्रशिक्षण, पुस्तक लेखन, वैदिक धर्म का प्रचार आदि कार्यों में संलग्न हैं। जिस उद्देश्य को समक्ष रखकर इस विद्यालय का संचालन आरम्भ किया गया था, उस में विद्यालय पर्याप्त मात्रा में सफल हुआ है।

संस्कृत भाषा, व्याकरण, उपनिषद्, दर्शन, वेद के अध्यापन तथा योग प्रशिक्षण के साथ यथा-सामर्थ्य कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य भी दर्शन योग महाविद्यालय के माध्यम से सम्पन्न किये जा रहे हैं, जिनमें से कुछ कार्य निम्न हैं-

(१) योग प्रशिक्षण शिविर- प्रति वर्ष दो बार यहाँ योग प्रशिक्षण शिविर का आयोजन होता है, जिसमें देश भर के १२-१३ प्रान्तों के साधक उपस्थित होते हैं। अब तक लगभग १५ योग शिविरों का आयोजन किया जा चुका है, जिसमें सैकड़ों साधकों ने भाग लेकर लाभ उठाया है। **(२) किशोर चरित्र निर्माण शिविर -** वर्ष में एक बार यह शिविर आयोजित करते हैं, जिसमें किशोरों को वैदिक धर्म, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास आदि का परिज्ञान कराया जाता है। **(३) वैदिक धर्म प्रचार -** देश भर के विभिन्न प्रान्तों में योग शिविरों का आयोजन तथा आध्यात्मिक व दार्शनिक विषयों पर प्रवचन के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार किया जाता है। **(४) साहित्य प्रकाशन -** योग आदि विषयों से सम्बन्धित अनेक पुस्तक, पुस्तिकाओं पत्रकों का प्रकाशन तथा उनका निशुल्क वितरण किया जाता है।

अज्ञानी व स्वार्थी लोग प्रत्येक अच्छे कार्य में विघ्न-बाधायें उपस्थित करते ही रहते हैं, यह कोई नई बात नहीं है। हम यथा सामर्थ्य अपना कार्य ईश्वर, वेद, ऋषि, व महापुरुषों के आदर्शों को समक्ष रखकर, निष्काम भावना से करते जा रहे हैं इन उत्तम

कार्यों के परिणामों को देखकर बुद्धिमान व्यक्ति वास्तविकता को जान लेते हैं। सज्जन व्यक्तियों का यह स्वभाव होता है कि वे केवल सुनी सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करते। जब तक प्रामाणिक रूप से कोई बात सिद्ध न हो जाये तब तक किसी बात को स्वीकार नहीं करते। हमने पूर्व भी निवेदन किया है कि हमारी कोई भूल त्रुटि दोष हो तो प्रेम पूर्वक हमें बतावें, प्रमाणों से सिद्ध होने पर हम उसे स्वीकार करेंगे, दोष बताने वाले का उपकार मानेंगे तथा यथा शक्ति सुधार का प्रयत्न भी करेंगे।

आर्य वन विकास क्षेत्र के न्यासी महानुभावों द्वारा उपलब्ध करायी गयी आवास व भोजन व्यवस्था के लिए हम उनका आभार प्रकट करते हैं। गुजरात में चलने वाले इस विद्यालय को देश की अनेक आर्य समाजों, आर्य सज्जनों, काशीराम भवन परिवार, देश भर के विशिष्ट पूज्य संन्यासी महानुभावों, विद्वानों, उपदेशकों, धार्मिक-दानी-सज्जनों माताओं, बहनों की ओर से जो सब प्रकार का सहयोग मिला है, इसके लिए हम हृदय से इन सब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अपने अभिन्न सहयोगी समादरणीय उपाध्याय श्री विवेकभूषण जी 'दर्शनाचार्य' के प्रति अनुगृहीत हूँ, जो मन, वचन, कर्म से एक होकर मेरे साथ इस उत्तम कार्य में संलग्न हैं।

मानव कल्याण के लिए वैदिक दर्शनों के अध्यापन तथा योग प्रशिक्षण आदि के इस महत्त्व पूर्ण कार्य को, ईश्वर की कृपा से यथा शक्ति भविष्य में भी करते रहेंगे। आशा है आप सभी महानुभावों का आशीर्वाद तथा सहयोग भविष्य में भी पूर्ववत् चलता रहेगा।

भवदीय

ज्ञानेश्वरार्यः



संक्षिप्त परिचय व उपलब्धियाँ

ब्र. सत्यजित्

नाम –	सत्यजित्
जन्मतिथि –	३१–१–१९६५
पिता-माता का नाम –	श्री रामकृष्ण रावत, श्रीमती विमला रावत,
जन्म स्थान –	ब्यावर, जिला–अजमेर, राजस्थान।
पूर्व अध्ययन –	लगभग साढ़े तीन वर्ष गुरुकुल झज्जर में; शेष सामान्य विद्यालय – महाविद्यालय – विश्वविद्यालय में।
उपाधि –	आयुर्वेदाचार्य (बी. ए. एम. एस.) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर। एम. डी. (आयुर्वेद) गुजरात आयुर्वेद युनिवर्सिटी, जामनगर।
पूर्व कार्य –	१ वर्ष प्रवक्ता (लेक्चरर) के रूप में राजकीय सेवा, चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, जि. सतना, म. प्र.।

दर्शन योग महाविद्यालय में प्रवेश – आर्य समाजी परिवार में जन्म पाने व लगभग साढ़े तीन वर्ष गुरुकुल में पढ़ने के बाद भी मेरी आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द के प्रति श्रद्धा-आस्था कम ही हो पाई थी। जितना-जितना इन की ओर झुकने का

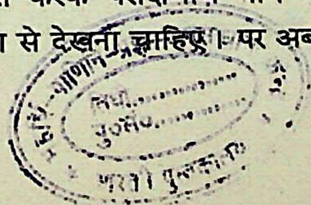
प्रयास किया जाता था उतना-उतना इनसे दूर भागने या उपेक्षा

रखने का अभ्यास बनता रहा। पिताजी चाहते थे कि मैं विवाह न करूं तथा अपना जीवन मोक्ष प्राप्ति, वेद व आर्यसमाज के लिए लगाऊं। उनकी यह इच्छा परस्पर विरोध का कारण बनी रही, मेरी प्रतिक्रिया तीव्रतर होती रही व परिणाम रूप में मैं वैचारिक स्तर पर स्वच्छन्द विचरने का अभ्यासी बन गया, आर्यसमाज से दूर हटता गया। धार्मिक रुचि कुछ अंश तक बनी रही, उसकी पूर्ति कभी-कभी अन्य मत-संप्रदायों के प्रवचन सुनने व साहित्य पढ़ने से करता रहा। आदर्शवादिता प्रारंभ से ही अच्छी लगती थी, अतः यम-नियमों के पालन की ओर भी कुछ झुकाव रहा, किन्तु पालन करने का स्तर अधिक नहीं कर पाता था। तत्संबंधी प्रश्नों व शंकाओं का समाधान प्रायः नहीं मिल पाता था। जो आदरणीय संबंधी - परिचित जन इनका समाधान - निर्णय देते थे उनमें व्यवहार की उच्च दृढ़ता न मिलने के साथ-साथ वाचनिक दृढ़ता भी प्रायः नहीं मिली। उनके निर्णय प्रायः ढुलमुल व समझौता परक रहा करते थे, जो मुझे पसंद नहीं आते थे। पुनरपि उच्च आदर्शवादी, स्पष्ट वक्ता, निर्णायक स्थिति को सीधे-सीधे कहने वाले सत्पुरुष की सामान्य खोज चलती रही। इस दौरान २-३ बार पूज्य स्वामी सत्यपति जी से भी मिलना हुआ, पर तब मैं उनसे अधिक प्रभावित न हो सका, फिर भी अन्यों की अपेक्षा उनमें भिन्नता की अनुभूति अवश्य हुई। इसी दौरान महात्मा गांधी की आत्म कथा - 'सत्य के प्रयोग' पढ़ने को मिली, उसने अच्छा प्रभाव डाला। पर उसका उपयोग व्यवहार रूप में बहुत

कम कर सका । धीरे-धीरे इस पुस्तक का प्रभाव भी धूमिल पड़ता हुआ लुप्त प्रायः हो गया ।

इस सब प्रक्रिया से निकलते हुए व उसके बाद के काल में अन्यों का परीक्षण करने का अभ्यास बढ़ता गया । इस परीक्षण में उनकी आदर्शवादिता, यम-नियमों के पालन का स्तर व जीवन में सुख-दुःख, शांति-अशांति, संतोष-असंतोष की स्थिति ये मुख्य विषय रहा करते थे । धीरे-धीरे उन स्थितियों में स्वयं को भी रख कर देखने लगा था । कुल मिला कर किसी का जीवन मुझे पूर्ण आश्वस्त नहीं कर सका, मेरे लिए आदर्श का केन्द्र नहीं बन सका । हां, कुछ सज्जन किसी-किसी क्षेत्र में आदर्श लगा करते थे, आदरणीय थे । स्वच्छन्द विचार रखने से अनेक आदर्शों में मैं स्वयं शिथिल होता गया व मेरा पतन होता रहा, जो काफी निचले स्तर तक पहुंचा । ऐसी दुरावस्था से उभरने के संस्कार कभी-कभी आते थे, कुछ प्रयास भी होता था, पर अधिक नहीं कर पाता था । इससे मैं अपने आप से निराश होता गया, अवसाद रहने लगा, अपने ऊपर से विश्वास घटता गया । स्वयं के सिद्धान्तों के दर्पण में स्वयं के आचरण को देखता था तो बहुत दुःख होता था, पर दूसरी ओर उससे उबर भी नहीं पाता था । ऐसे क्षणों में अनेक बार एकांत में फूट-फूटकर रोता था, सोचता था कि अच्छा होता यदि मैं पिताजी के निर्देशानुसार चलता । पर तब भी उनके निर्देश को मानने की स्वीकारोक्ति उनके समक्ष नहीं कर पा रहा था, उसमें अपनी पराजय-अपमान का होना समझता था ।

इस विचित्र स्थिति में अचानक गांधी जी की आत्मकथा पुनः मिली, पढ़ने की तीव्र इच्छा जगी व गंभीरता पूर्वक-विचारपूर्वक उसे धीरे-धीरे पढ़ डाला। डूबते को अच्छा सहारा मिला, आत्मविश्वास जगा, आशा की किरण जगी कि मैं भले ही निम्न स्तर को प्राप्त हो चुका हूँ पर अब भी प्रयास करके ऊँचा उठ सकता हूँ जैसे गांधीजी अपने जीवन में निचले स्तर को छोड़कर उच्च आदर्शों को प्राप्त कर सके थे। इसके कुछ ही दिनों बाद पूज्य स्वामी सत्यपति जी से दिल्ली-कमलानगर में लंबी बातचीत का अवसर मिला। इस बार स्वामी जी का प्रभाव बहुत पड़ा। उनकी स्पष्टवादिता, उच्च आदर्शवादिता, आदर्शों को दृढ़ता से बताना व उसमें कोई विकल्प न रखना, दृढ़ता पूर्वक उचित निर्णय देना, समझौता-वादी दृष्टिकोण न होना आदि बातें जिन्हें मैं वर्षों से ढूंढ रहा था मुझे अंदर तक छू गईं। इन दिनों मेरे विवाह के प्रयास जारी थे, मैं भी चाहता था। बातचीत के अंत में जाते-जाते खड़े-खड़े स्वामीजी द्वारा कहे गये महर्षि दयानन्द के एक वाक्य ने मेरे चिंतन को बहुत प्रभावित किया, वह वाक्य था - "चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाववालों का विवाह कभी न होना चाहिए।" यह वाक्य अगले कई दिनों तक प्रायः दिनभर मेरे विचार का केन्द्र रहा। चिंतन इस ओर झुका कि ऐसा होने की संभावना बहुत क्षीण है। अतः अभी कोई निर्णय न करके विवाह के प्रयास स्थगित करके परीक्षणार्थ योग मार्ग व योगाभ्यासियों को निकटता से देखना चाहिए। पर अब भी मैं



अपने इस विचार को अन्यों के समक्ष प्रकट नहीं कर पा रहा था । इन्हीं दिनों पिताजी का अचानक देहरादून से मेरे पास चित्रकूट आना हुआ । तब साहस करके मैंने अपनी बात रख ही दी । उन्होंने पूज्य स्वामी सत्यपतिजी से पुनः मिलने को कहा । मैं तपोवन-देहरादून में पुनः स्वामीजी से मिला । वहां दोनों के प्रोत्साहन व सद्‌निर्देशों के सहाय से मैं राजकीय सेवा छोड़कर तीन वर्ष के लिए परीक्षणार्थ यहां दर्शन योग महाविद्यालय में प्रवेश पा सका ।

उपलब्धियाँ – यहां रहते हुए दो वर्ष पूर्ण हो चुके हैं । अपने जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन का अनुभव करता हूँ, विशेषतः मानसिक स्तर पर । ऐसा लगता है कि गहरी खाई में गिरते-गिरते बच गया हूँ । इस काल में जो देखा, सुना, जाना, पढ़ा, सोचा व कुछ जीवन में उतारने का प्रयास किया उसके परिणाम स्वरूप जो उपलब्धियाँ हुईं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं –

१. ईश्वर प्राप्ति को जीवन का मुख्य लक्ष्य रखते हुए आजीवन ब्रह्मचारी रहने का निर्णय कर सका ।
२. निराशा व मानसिक अवसाद से प्रायः छुटकारा ।
३. मन में उत्साह, उमंग, धैर्य, साहस, सहिष्णुता, अनुद्वेग, शांति आदि की बहुत वृद्धि ।
४. आत्मविश्वास में बहुत वृद्धि ।
५. मन की एकाग्रता, स्मृति शक्ति, तर्क शक्ति व उचित निर्णय करने की क्षमता में पर्याप्त वृद्धि ।
६. आर्ष ग्रंथों, महर्षि दयानन्द व आर्य समाज के प्रति श्रद्धा – विश्वास में बहुत वृद्धि ।

७. उपासना के प्रति अरुचि समाप्त होकर कुछ रुचि पैदा हो सकी है ।

८. अभी तक के पूर्व जीवन में कभी इतना शांत, सुखी, प्रसन्न व निश्चिंत नहीं रहा, जितना इन दो वर्षों में रहा ।

९. तिस्रैषणाओं में निरन्तर कमी ।

१०. निःस्वार्थ/निष्काम कर्म की प्रवृत्ति में पर्याप्त वृद्धि ।

११. दोषों को पकड़ने व फिर दूर करने की शैली सीखी ।

१२. यम-नियमों का व्यवहार में सूक्ष्म पालन करने संबंधी ज्ञान बढ़ा ।

१३. योग मार्ग के साधकों-बाधकों का ज्ञान हुआ । साधकों को प्राप्त करने व बाधकों को दूर करने की प्रक्रिया सीखी ।

१४. अंतर्मुखी होना सीखा, आंतरिक कार्यों को जाना । इससे अन्यों का परीक्षण करते रहने की प्रवृत्ति में बहुत कमी ।

१५. निदिध्यासन, सूक्ष्म विषयों पर चिंतन करने की शैली व प्रतिपक्ष भावना करना सीखा ।

१६. प्रवचन देने का अभ्यास हुआ ।

१७. पांच दर्शनों, कुछ उपनिषदों व वेद के कुछ अंशों को गुरु मुख से पढ़ सका ।

१८. वर्तमान में प्राप्त उपरोक्त उपलब्धियों को देखते हुए, इनके आधार पर अगले कुछ वर्षों में उच्च स्तर को प्राप्त करने के दृढ़ संकल्प व उच्च आत्मविश्वास की अनुभूति ।

कृतज्ञता – ईश्वर की महती कृपा है जिसने अच्छा परिवार, अच्छे गुरुजन व अच्छे साधन प्राप्त कराये । पूर्वज ऋषियों-विद्वानों के प्रति नतमस्तक हूँ जिन्होंने ब्रह्मविद्या को

अपने से अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने का प्रयास किया, जिसके कारण आज भी यह हमें उपलब्ध हो सकी। पूज्य स्वामी सत्यपति जी के प्रति समर्पित हूँ जिन्होंने ब्रह्मविद्या को अपने जीवन में उतार कर अपने को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया व जिनके प्रयास सदा इस दृष्टि से होते हैं कि अन्य भी अधिक से अधिक मानव अपने-अपने जीवन को सफलता के उच्चतम शिखर 'ईश्वर-प्राप्ति' तक पहुंचा सकें। गुरुजन द्वय आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी व उपाध्याय श्री विवेकभूषण जी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने योग का प्रशिक्षण दिया, दर्शनादि अध्यापन किया व सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखा। वरिष्ठ साथियों ब्र. श्रीनिवासजी, ब्र. सुमेरुप्रसादजी व ब्र. अभयकुमारजी का भी आभारी हूँ जिन्होंने समय देकर पढ़ाया। अन्य ब्रह्मचारियों का भी आभार प्रकट करता हूँ जो विभिन्न तरीकों से उन्नति में सहायक बने व रुग्णावस्था में मेरी सेवा की। आर्यवन विकास फार्म ट्रस्ट के सभी ट्रस्टी गणों व समाज के दानी सज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने पू. स्वामी जी को इस योजना में महान् आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। जन्म देने वाले मात-पिता जिन्होंने इतने वर्षों तक पाल-पोसकर बड़ा किया, सतत् अच्छे संस्कार डालने का महान् पुरुषार्थ किया व अब भी जिनका समर्थन मिल रहा है उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अन्य परिजनों का भी समय-समय पर बहुत सहयोग रहा है, उनका हार्दिक आभार मानता हूँ।



संक्षिप्त परिचय एवं उपलब्धियाँ

ब्र. सुमेरुप्रसाद

आनन्द के उच्चतम शिखर को छू लेने की लालसा समस्त प्राणियों के अन्तस्तल में विद्यमान होती है जिसके लिए वह अहर्निश प्रयत्नशील दिखाई देता है। समय, साधन व पुरुषार्थ के अभाव में ये भावनाएं निराशा के बादलों में सिमटी हुई प्रसुप्त सी होती हैं, किन्तु सहायकों के उपस्थित हो जाने पर निराशाओं की मेघ मालाएं उत्साहरूप विद्युत्तरङ्गों से चूर-चूर होकर धराशायी हो जाती हैं। आशा की किरणें फूट पड़ती हैं, गगन शुभ हो जाता है, मार्ग प्रशस्त हो जाते हैं, लक्ष्य दूर से ही दृष्टिगोचर होने लगता है और पथिक प्रफुल्लितमना अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ता है।

उन्हीं पथिकों में से मैं भी एक हूँ। अब तक मेरे जीवन के साथ उपर्युक्त अभिप्रायों का अत्यन्त सामञ्जस्य रहा है। इस यात्रा में दर्शन योग महाविद्यालय से सर्वाधिक अनुप्राणित हुआ हूँ। जलपात्र चाहे समुद्र में पड़े या झील में पड़े अथवा किसी कुएँ में डुबकी लगाए, जल तो उतना ही भर पाएगा जितनी उसकी सामर्थ्य है। वैसे ही मैं अपनी योग्यतानुसार जो कुछ इस विद्यानीर निधि से प्राप्त कर सका, जनता को भी इसका परिज्ञान हो एतदर्थ कुछ उपलब्धियों को प्रस्तुत कर रहा हूँ। उपलब्धियों को समझने में सरलता हो उसके लिए मेरे यहाँ आने से पूर्व का कुछ जीवनवृत्त आधार स्वरूप प्रसङ्गोचित जान उद्धृत कर देता हूँ।

नाम- सुमेरु प्रसाद
जन्म तिथि- २० अगस्त १९६८ (विद्यालयानुसार)
पितृनाम- श्री पातोजी आर्य
मातृनाम- श्रीमती रामादेवी
आधुनिक शिक्षा- कक्षा नवम (पूर्वार्द्ध)
प्राच्य शिक्षा- व्याकरण महाभाष्य पर्यन्त ।

१-१ वर्ष गुरुकुल अयोध्या उ.प्र., गु. झज्जर हरियाणा तथा ८ वर्ष गु. प्रभाताश्रम भोलाझाल मेरठ उ. प्र. ।

दर्शन यो. म. वि. आर्यवन में प्रवेश का कारण- जब मैं किसी को भी राजनैतिक सामाजिक या आध्यात्मिक व्याख्यान देते हुए देखता था तो विचारता था व्याख्यान देना सर्वश्रेष्ठ कार्य है, व्याख्यान के द्वारा दुनिया के सारे कार्य सिद्ध हो सकते हैं । व्याख्यान से मेरा तात्पर्य था ओजस्वी शब्दों में कम से कम घन्टे भर धाराप्रवाह बोलना । जो इस प्रकार बोलना जानता है वही विद्वान् है, मुझे ऐसा ही बनना है । मेरी समझ से मेरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्यसमाज सर्वाधिक उपयुक्त मिला । आर्य समाज से बचपन से सम्पर्क तो था परन्तु अपनी ओर से नहीं घर वालों की ओर से । शैशवकाल आते आते उच्च विद्यालय में प्रवेश पाते ही इस संबंध को तोड़ दिया जो कि अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ । वक्ता बनने की योजना तो भूल गया बुराइयों की ऐसी गर्त में पड़ा कि जान बचाना असम्भव लगने लगा ।

ऐसी विकट परिस्थिति में फंसा हुआ अनायास एक आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर मेला देखने के बहाने पहुँच

गया। सौभाग्य से एक उपदेशक महाशय की ओजस्वी वाणी से रामायण का वृत्तान्त सुनने को मिला। श्री राम व गुरुकुल की चर्चा करते हुए वे निराशा जनक स्थिति में जनता को तथा स्वयं को धिक्कार रहे थे – "जाने कितने वर्ष बीत गए मुझे कहते हुए, परन्तु कोई भी मेरी बात मानने को तैयार नहीं, क्या होगा इस देश का।" मुझे यह धिक्कार असह्य था, मैंने मन ही मन गुरुकुल जाने का निर्णय ले लिया और आधुनिक विद्यालय का परित्याग कर दिया। अगले दिन मैं घर से विद्यालय जाने के नाम पर पलायन कर गुरुकुल अयोध्या पहुँच गया। आर्य समाज से पुनः संबंधं बना लिया। आज मैं उस महान् आत्मा उपदेशक महोदय का भी शतशः धन्यवाद करता हूँ जिन्होनें मेरे जीवन को यह नवीन मोड़ दिया। यद्यपि उस दिन के बाद बहुत प्रयत्न करने पर भी उस महामूर्ति से भेंट नहीं कर पाया, किन्तु अब भी श्रद्धाभिभूत हो वन्दना करता हूँ। अस्तु गुरुकुल आने के बाद पता चला कि व्याख्याता बनने के लिए विद्वान् बनना पड़ेगा और उसके लिए अष्टाध्यायी व्याकरण पढ़ना आवश्यक है। मैंने अष्टाध्यायी को लक्ष्य बना लिया। इसकी पूर्ति तृतीय गुरुकुल प्रभाताश्रम में हुई। परन्तु अब भी व्याख्यान देना नहीं आया। इसके बाद सुना दार्शनिक लोग सबसे अधिक बोलना जानते हैं। फिर दर्शन पढ़ने का विचार बना लिया। इसके लिए समुचित स्थान आर्यवन का स्मरण आया। इस विद्यालय के आरंभ से ही मुझे इसकी जानकारी थी। पू. स्वामी जी ने यहाँ आने को पूछा था किन्तु व्याकरण का पाठ मध्य में था, मैंने उपेक्षा कर दी तथा भूल गया।

व्याकरणोपरान्त प्रभाताश्रम में व्यवस्था तथा अध्यापन का कार्य करना पड़ा। अयोग्यता के कारण मैं इस कार्य को निभा नहीं पाया और दुःखी हो जाता था। इस दुःख से बचने के लिए लम्बी-लम्बी यात्राएँ करने लगा। एक बार उत्तराखण्ड की यात्रा के मध्य देहरादून में पू. स्वामी सत्यपति जी से भेंट हुई। कुछ लौकिक तथा आध्यात्मिक चर्चा करते हुए अपने मत को प्रबल बनाने की चेष्टा.की परन्तु निरुत्तर हो गया। तब से मैंने उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली तथा मुख्यरूप से दर्शन पढ़ने व गौणरूप से योगाभ्यास सीखने के लिए विद्यालय में प्रवेश ले लिया।

आज लगभग पौने तीन वर्ष तक इन चरणों में रहकर पाँच दर्शनों का अध्ययन किया। अब भी ठीक से व्याख्यान देना तो नहीं आया परन्तु उद्देश्य व विचारों में बहुत परिवर्तन आ गया है तथा और भी अन्य बहुत चीजें प्राप्त हुईं जिनमें से कुछ का दिग्दर्शन यहाँ पाठकवृन्द को करा रहा हूँ।

उपलब्धियाँ

(१) मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् – मेरी धारणा थी कि कहीं पर लिखे हुए नियम या ध्यातव्य बातें व्यक्ति की अपनी कल्पनाएँ अथवा संस्थाओं की पहचान, न्यायालयादि में अभियोगों में काम आने का प्रमाण अथवा उन लिखे स्थानों की शोभा मात्र होते हैं। आचरण से इसका कोई संबंध नहीं। उदाहरण के लिए आर्य समाजों में लिखे १० नियम, रेलवे आदि में बेटिकट यात्री होशियार, बस आदि में धूम्रपान निषेध आदि आदि। यहाँ भी प्रवेश के लिए मुझे कुछ नियम पढ़ने के लिए

दिए गए तथा प्रार्थना पत्रादि लिखना पड़ा । मैंने सहज भाव से एक बार देखकर जो कहा लिख दिया । दो-तीन महीने बाद मुझे बार-बार उन्हीं नियमों के अनुसार चलना पड़ा तो आश्चर्य हुआ "क़हाँ फँस गया" यहाँ तो पंक्तियों के पीछे चलना पड़ेगा । अब भी वही लिखी पंक्तियाँ, दिनचर्या व नियम वैसे ही लिखे हैं परन्तु अब सहज दिखते हैं, सरल हो गए हैं और मुझे विश्वास हो गया है कि मैं महात्माओं की ही चरण शरण में विद्यमान हूँ ।

(२) दिनचर्या - ९-१० वर्ष गुरुकुलों में रहने के कारण यहाँ की सम्पूर्ण दिनचर्या विशेष प्रतिकूल नहीं थी, परन्तु प्रातः ४ बजे से ८ बजे तक शौच, व्यायाम, स्नान, उपासना तथा यज्ञपर्यन्त ८ बजे तक का समय मेरे लिए हिमालय की पैदल यात्रा के समान दुस्सह था । प्रभाताश्रम में ज्वर तथा उदरशूलादि व्याधि ग्रस्तता के कारण तथा उत्तर भारत की भयंकर शीत के सामने प्रयत्न करने पर भी सफलता न मिलने से निराश होकर इस काल में बिस्तर पर ही समय गंवाता रहा । गर्मियों में काम चला लेता था । यहाँ विद्यालय में उतनी शीत न होने से तथा स्वास्थ्य भी कुछ-कुछ ठीक होने से दिनचर्या पालन करने की सामर्थ्य दिखती थी, पर कर नहीं पाता था, जिससे काफी दुःख होता था । यद्यपि आचार्यजी से इस समय में कुछ काल के लिए अनुमति थी पुनरपि अन्यों के क्रियाकलापों को देखते हुए "अवसर खो रहा हूँ" ऐसा सहन नहीं हो पा रहा था । साथ ही साथ प्रकोष्ठ में रहने वाले श्रीमान् साधक जी भी व्यायाम, स्वास्थ्य निर्माणादि के विषय में खूब सत्प्रेरणा देते ही जा रहे

थे। रात्रि आत्मनिरीक्षणोपरान्त श्रद्धेय आचार्य जी से नित्य नये ज्ञान की प्राप्ति तथा प्रातः क्रियात्मक योग की कक्षा में श्रीमान् उपाध्याय जी से व्यवहारिक ज्ञान तथा संशयों की निवृत्ति हो रही थी। इन सब का उद्देश्य मुझे यही दिखता था कि मुझको पुरुषार्थ करना है, प्रमादमय जीवन से कुछ नहीं बनेगा। अतः इन महानुभावों से प्रायः चिढ़ जाता था, विशेषकर श्री साधक जी से। प्रातः काल इन पर दृष्टि पड़ते ही हृदय दहल जाता था, किन्तु अभिव्यक्त इसलिए नहीं कर पाता था कि उन प्रेरणाओं से दिनों दिन लाभ प्रतीत हो रहा था तथा उनको भी स्वयं नियम पालन करता हुआ ही देखता था। ६ मासोपरान्त शारीरिक रूप से दिनचर्या पालन करने में समर्थ हो गया। व्यायामादि में रुचि हो गई। इसके लिए मैं उन महानुभावों से क्षमा चाहता हूँ। भोजनादि की विशेषता से कहीं कोई न्यूनता नहीं दिखी। शरीर का स्वास्थ्य भी बहुत ठीक हो गया। शिष्याध्यापक तथा ब्रह्मचारियों के परस्पर प्रेमपूर्वक सद्व्यवहार से विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(३) जीवन-निर्माण परिज्ञान – प्रायः व्यक्ति को अपनी मौलिकेच्छा का परिज्ञान नहीं होता, इस इच्छा की इति श्री कहाँ होती, किन साधनों के संग्रह तथा किन बाधकों के परिहार से यह कार्य सम्पन्न होता है आदि। इन बातों को जाने बिना उसके लिए दुःखों से बचना नितान्त असम्भव है। इस विषय में यहाँ पर्याप्त सुनने, समझने तथा आचरण में लाने का स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। दोषों का परित्याग तथा सद्गुणों का संग्रह जीवन निर्माण है ऐसा अब तक समझ सका। सर्वथा

दुःख निवृत्ति एवं सर्वथा सुखप्राप्ति इस विषय में सर्वत्र समानता होते हुए इनके साधनों का दुष्कर चयन सबके वश की बात नहीं। वेदादि आर्ष मतों से विपरीत आचरण करता हुआ अपनी बुद्धि की प्रधानता रखनेवाले का दुःखाज्ञान तिमिर तिरोहन कभी भी संभव नहीं जान पड़ता। अतः वेदादि सिद्धान्तों के अनुकुल अनुभवी गुरूओं के निर्देश में निरर्थक श्रम शक्ति व समय से बचते हुए शीघ्र ही उन्नतिशील हुआ जा सकता है। निदिध्यासन तथा आत्मनिरीक्षण जीवन निर्माण का सर्वोत्तम साधन है। सौभाग्य से ये सब चीजें मुझे प्राप्त हो गई।

(४) ब्रह्मचर्य – ब्रह्मचर्य हीन जीवन निराधार झोपड़ी के तुल्य है जिसे तृष्णारूप झंझावात कहीं भी तिनके तिनके के रूप में बिखेर देता है। रोग शोक वियोग रूप चक्रवातों में इसकी ऐसी दुर्गति होती है कि सदाचार रूप छप्पर को थामने वाला धैर्यरूप स्तम्भ भी उखड़ा ही जान पड़ता है। दुर्भाग्य से मेरी यही स्थिति बन गई थी। ब्रह्मचर्य विनाशरूप कुटेवों की चपेट में आकर मन–वचन–शरीर से जर्जर हो चुका था। इस भयंकर विनाश से अपने आप को बचाने में यहीं समर्थ हो सका। उत्साह, आत्मबल, ईश्वर प्रेम, ऋषिनिष्ठादि तथा योग मार्ग में चलने का आधारभूत साधन प्राप्ति यह मेरी सर्वोत्तम समुपलब्धि है।

(५) उद्देश्य निर्णय – तुलसी रामायण, वाल्मीकि रामायण भाषानुवाद, सम्पूर्ण महाभारत भाषानुवाद, श्री रामशर्मानुवाद, १०८ उपनिषदें, मन्वादि १८ स्मृतियाँ, गीता प्रेस के कल्याण विशेषांक अग्नि ब्रह्माण्डमत्स्यपद्म ब्रह्मवैवर्त भागवत पुराण भाषाग्रंथ, मुन्शी प्रेमचन्द की शताधिक कथाएँ, रजनीश की

अनेक पुस्तकें पढ़कर तथा काशी प्रयाग मथुरा अयोध्या उज्जैन तिरुपति गोमुखयमनोत्री अनन्तनाग कश्मीर आदि स्थानों का तीर्थ रूप में भ्रमण करके निष्कर्ष निकाला कि जैसे बहते हुए जल को समुद्र पाकर ही चैन होता है वैसे ही मनुष्य को बिना गृहस्थ में गए सुख शान्ति की कल्पना करना निराधार है, इसमें विकल्प ढूढ़ना व्यर्थ की बातें हैं, चाहे सत्यार्थ प्रकाश में कुछ भी लिखा हो। परन्तु गुरुजी की स्पष्ट आज्ञा न होने से मैं उधेड़बुन में था। यहाँ आकर यह सब संशय दूर हो गया तथा जैसे समुद्र को प्राप्त जल को भी सूर्य की किरणें उड़ा ले जाती हैं और बादल बना ऐसे स्थान में पटक देती हैं कि वह धूल में मिल जाता है, उसका नामोनिशान नहीं बचता। अतः इस चक्र से सकुशल निकल गया। अब तो यही निर्णय है कि आजीवन ब्रह्मचर्य रहते हुए वेदादि शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन सहित ऋषि कर्म करते हुए अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही करनी चाहिए। प्रभु की कृपा तथा इन गुर्वादि महानुभावों का सहयोग सदा मिलता रहे बस यही कामना बनी रहे।

(६) कृतज्ञता – चराचर ब्रह्माण्ड में ब्रह्म महान् है। ब्रह्म को बताने वाली, ब्रह्म विद्या महान् है। ब्रह्म विद्या को जानने व जनाने वाला ब्रह्मवेत्ता महान् है। इनको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी महान् है। इनका संभरण करनेवाली संस्थाएँ महान् हैं। इनके सहयोगी व जिज्ञासु महान् हैं॥

"मैं भी महान् हो जाऊँ" मेरी इस निष्कामना की सद्भावना को ज्ञाताज्ञातरूप में प्रश्रय देनेवाली सभी महान् आत्माओं के प्रति मेरी कृतज्ञता भी महान् हो॥ इति शम्॥



मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय

ब्र. हरस्वरूप आर्य

मेरा जन्म उत्तर प्रदेश में पीलीभीत जिले के अन्तर्गत बीसलपुर नाम के एक कस्बे में १५ जौलाई १९५७ में एक पौराणिक परिवार में हुआ। पौराणिक परिवार में जन्म लेने के कारण बचपन से ही विशेषकर माताजी पौराणिक कहानियों को सुना-सुनाकर मुझमें उन कपोल-कल्पित देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा विश्वास जगाने का प्रयत्न करती थीं। इन कहानियों का प्रभाव मुझ पर बहुत अधिक हुआ। परिणाम स्वरूप अत्यन्त रुचि के साथ श्रद्धापूर्वक मूर्तिस्थ देवी-देवताओं को ईश्वर मानकर उपासना करने लगा।

आर्य समाज से संपर्क :- सन् अस्सी में गुरुकुल महाविद्यालय कण्वाश्रम के संस्थापक ब्र. विश्वपालजी जयन्त का हमारे यहाँ आगमन हुआ। आर्य समाज की तरफ से उनका शारीरिक शक्ति प्रदर्शन का एक कार्यक्रम रखा गया। मुझे भी उस कार्यक्रम को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके शरीर सौष्ठव और कार्यक्रम को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। जिज्ञासा वशात् एक दिन ब्र. जी के गुरुकुल में पहुँचा, । उन्होंने मेरा थोड़ा सा परिचय लेकर बड़ी आत्मीयता से गुरुकुल में रखा। शनैः शनैः ज्ञान हुआ ब्रह्मचारी जी आर्य समाजी हैं। पश्चात् स्वामी दयानंद जी का महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का कुछ अध्ययन किया। सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से विचारों में कुछ उथल-पुथल हुई। आर्य विचार धारा से प्रभावित होकर

वर्षों तक मूर्ति पूजा के प्रति श्रद्धा का चित्र जो मानस पटल पर अंकित था अब वह धूमिल पड़ने लगा। मूर्ति पूजा का स्थान सन्ध्या-उपासना ने ले लिया, और एक दिन मूर्ति पूजा को सर्वथा त्यागकर श्रद्धा से वैदिक धर्म का अनुयायी बन गया। अन्य कार्यों से जो समय बचता उसे आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय में व्यतीत करने लगा। आर्य समाज से संबंध विशेष हो जाने के कारण आर्य समाज के उत्सवों में बड़े उत्साह से भाग लेता था। गुरुकुलों के धार्मिक पवित्र वातावरण को देखकर मन में तीव्र इच्छा उत्पन्न होती थी कि मेरे रहने योग्य गुरुकुल ही सर्वश्रेष्ठ स्थान हो सकता है।

एक बार की बात है, महात्मा आनंद स्वामी जी की कुटिया को देखने तपोवन पहुँचा, सौभाग्य से उस समय पू. स्वामी सत्यपति जी महाराज का योग शिविर चल रहा था। शिविर अन्तिम चरण में था, स्वामी जी का उपदेशादि सुनने के लिए योग कक्षाओं में भाग लेने लगा। वहाँ स्वामी जी से दर्शनों के अध्ययनादि के विषय में बातचीत हुई। तपोवन से प्रस्थान करते समय स्वामी जी ने यहाँ (आर्यवन) का पता दिया और साथ ही आने को भी कहा। कुछ समय बाद मैं उनके आदेशानुसार गुरुकुल आर्यनगर हिसार के आदरणीय आचार्य जी से सहर्ष अनुमति प्राप्त कर १ जून ९३ को आर्यवन आ गया। यद्यपि आगमन से पूर्व भी रहने के संबंध में पत्र व्यवहार हुआ था। आचार्यश्री ज्ञानेश्वर जी से संक्षिप्त वार्त्ता के पश्चात् एक विद्यार्थी के रूप में विद्यालय में प्रवेश हुआ। मैं आचार्य श्री ज्ञानेश्वरजी पूज्य श्री स्वामीजी तथा उपाध्याय श्री विवेक

भूषणजी का हृदय से आभारी हूँ कि मेरी शैक्षणिक विशेषतः संस्कृत की योग्यता न्यून होने पर भी योग्यता सम्पादित करने का शुभ अवसर दिया।

उपलब्धियाँ

१. शारीरिक और बौद्धिक उन्नति : – खान–पान व अनुचित आहार–विहार आदि के कारण शरीर दुर्बल दिखाई देता था। परन्तु यहाँ की नियमित दिनचर्या शुद्ध खान–पान, प्रदूषण रहित वातावरण प्राप्त होने के कारण शरीर दौर्बल्य धीरे–धीरे दूर होता गया, और पहले की अपेक्षा शरीर अधिक स्वस्थ हो गया। शारीरिक विकास का फल यह हुआ कि मानसिक कार्य करने की क्षमता में भी वृद्धि हुई। बौद्धिक शक्तियाँ जो प्रायः सुप्त सी पड़ी हुई थीं, यहाँ बौद्धिक कार्य अधिक होने के कारण उनमें कुछ सक्रियता का अनुभव किया। इसका प्रमाण यह है कि पहले जो कोई जैसा कहता, समझाता अथवा पुस्तकों में था उसको प्रायः वैसा का वैसा अन्तिम सत्य के रूपमें स्वीकार कर लेता था। बातचीत कैसे करनी चाहिए ? तर्क, ऊहा, प्रमाणों के प्रयोग की विधि क्या है ? इनका कैसे प्रयोग करना चाहिए ? इन सब के बारे में किंचित् भी ज्ञान न था। उपरोक्त बातों का स्वयोग्यतानुसार ज्ञान अर्जित किया। इस प्रकार यहाँ रहते हुए जहाँ एक ओर शारीरिक विकास में गति हुई तो दूसरी और बौद्धिक विकास में भी वृद्धि हुई।

२. ईश्वर, जीव, प्रकृति का यथार्थ ज्ञान : – ईश्वर, जीव, प्रकृति की सत्ता भिन्न–भिन्न है और ये तीनों स्वरूप से अनादि

हैं। वेद प्रतिपादित इस त्रैतवाद को सत्यार्थ प्रकाश में अनेकों बार पढ़ा होगा, किन्तु इनका वास्तविक स्वरूप क्या है ? यह बुद्धिगत नहीं होता था और कभी–कभार कोई शंका उठती भी थी तो उसका समाधान देने वाले प्रायः नहीं मिलते थे। अथवा यूँ कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इन विषयों से बिल्कुल अनभिज्ञ था। यहाँ रहते हुए गुरुजनों से इनके विषय में वार्तालाप हुआ तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो बुद्धि पर जमी अज्ञान की सैकड़ों परतें एक एक करके हटती जा रही हों और यथार्थ ज्ञान का शुद्ध प्रकाश बुद्धि का जैसे पथप्रदर्शक बन गया हो। इस प्रकार ईश्वर क्या है ? और उसका स्वरूप क्या है ? उसके क्या कार्य हैं ? क्या लक्षण है ? जीव का स्वरूप परिभाषा व लक्षण क्या हैं ? आदि आदि। अनेक गंभीर सूक्ष्म प्रश्नों का समाधान यहाँ प्राप्त हुआ। जिसके लिए मैं सभी गुरुजनों का विशेष आभार प्रकट करता हूँ।

३. मानसिक विकारों पर विजय :– काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अभिमान आदि दोष प्रायः व्यक्ति की उन्नति में जहाँ एक ओर प्रबल बाधक बनते हैं तो दूसरी ओर व्यक्ति इन दोषों के कारण स्वयं के लिए भी दुःख उत्पन्न कर लेता है और साथ ही दूसरों को भी दुःख देता है। बाहरी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने अधीन कर लेना आन्तरिक शत्रुओं की अपेक्षा सरल है। आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए केवल एक दिन एक सप्ताह, एक मास या एक वर्ष का समय निश्चित हो ऐसा नहीं है। इनको कुचलने के लिए क्षण क्षण में युद्ध करना पड़ता है ये शत्रु इतने प्रबल हैं कि इनको समूल

कुचलने के लिए एक जन्म तो क्या अनेकों जन्म भी लेने पड़ सकते हैं और यह भी तभी संभव है जब निरंतर सतत् इनका नाश करने के लिए मानव पुरुषार्थ करता रहे। मैं भी इन दोषों का शिकार बना हुआ था प्रसन्नता के क्षण कभी-कभी ही सौभाग्य से मिलते थे। परम आश्चर्य तो यह है, कि इस बात को जानता हुआ भी कि ये दोष जीवन की उन्नति में रोड़े अटकाने वाले हैं तथापि इन दोषों का परिहार करने में अपने को असमर्थ सा पाता था। गुरुजनों की कृपा से, विशेषकर आचार्यश्री ज्ञानेश्वरजी से इन दोषों का निवारण करने में जो ज्ञान विज्ञान प्राप्त हुआ वास्तव में वह अपने आप में अद्वितीय है। पहले की अपेक्षा अपने अन्दर इन दोषों की कुछ न्यूनता अनुभव करता हूँ जिससे जीवन में कुछ शान्ति प्रसन्नता उत्साह की अनुभूति होती है। अथवा यों कहें कि जितनी जितनी मात्रा में संघर्ष करते हुए इन दोषों को दबाता हूँ, उतनी-उतनी मात्रा में सुख, शान्ति और आनंद की अनुभूति करता हूँ।

४. योग विषयक अनेक भ्रान्तियों का निराकरण :- योग विषय से संबंधित अनेक विद्वानों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हुए उनमें स्थित अनेक ऐसी बातों को भी प्रामाणिक मानकर अपना लिया था, जो अब गलत और अप्रासंगिक ठरहती हैं। उनमें से कुछ बातें प्रसंगवश यहाँ भी लिखता हूँ जैसे ! आसनों को करने का नाम ही योग है। योगी को समाधि सिद्ध करने के लिए चौबीसों घण्टे (निद्रा वृत्ति का पूर्ण निरोध) निद्रा का रोकना आवश्यक है। योगी की आयु हजारों वर्षों की होती है। एक ही आसन पर निरंतर तीन घण्टे या उससे अधिक

समय तक बैठे रहने से ही आसन की सिद्धि होगी, अन्यथा नहीं। अहिंसासिद्धि प्राप्त योगी के प्रति सभी प्राणी पूर्ण रूप से वैर भाव त्याग देते हैं। सत्य की सिद्धि प्राप्त हो जाने पर योगी की वाणी अमोघ हो जाती है वह जैसा कहता है, वैसा हो जाता है, यदि योगी किसी अधार्मिक को कह दे 'तू धार्मिक हो जा' तो वह अवश्य ही धार्मिक हो जाता है। योगी अनेक मासों और वर्षों तक बिना खाये पीये जीवित रह सकता है। इसी प्रकार की अनेकानेक भ्रान्तियों के जाल में मन को वर्षों उलझाये रहा। यहाँ रहते हुए योगदर्शन के सूत्रों के जो अर्थ और व्याख्याएं सुनने को मिली उनसे मैं हतप्रभ रह गया। ये अर्थ और व्याख्याएं मेरे लिए बिल्कुल नवीन थीं। पूर्वकाल में अनेक अप्रामाणिक पुस्तकों को पढ़ कर जिन मान्यताओं को पूर्ण सत्य समझ कर अपना लिया था वे प्रमाणों और तर्क से एक एक करके धराशायी होने लगीं। तब मुझे ज्ञात हुआ उपरोक्त मान्यताएं जिन्हें सत्य समझकर ग्रहण कर ली थी कितनी सारहीन और मिथ्या थीं। तथा सत्य मार्ग से विमुख करने वाली थीं। और यह सब गुरुजनों की विशेष कृपा से ही संभव हो सका कि मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य (ईश्वर प्राप्ति) में प्रबल बाधक बनने वाली अवैदिक मान्यताओं को तिलाञ्जलि देकर शुद्ध वैदिक योग मार्ग का वरण किया इससे अपने और दूसरों के जीवन के लिए भी कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस ज्ञान रुपी प्रकाश से कौन कितना लाभ उठा सकता है, यह व्यक्ति की योग्यता, क्षमता, और इसके संस्कारों पर निर्भर करता है।

५. व्याख्यान शैली में सुधार :- मनोविज्ञान का एक सिद्धांत है कि मनुष्य दूसरे मनुष्यादि के द्वारा किये गए जिन कार्यों को देखता है, वह वैसा ही बनना चाहता है। जैसे पहलवान को देखकर पहलवान विद्वान् को देखकर विद्वान् बनने की इच्छा होती है। मैं भी जब किसी व्याख्याता या प्रवक्ता का व्याख्यान, उपदेशकों का उपदेश सुनता था, उस समय मेरे मन में भी वैसा ही बनने की इच्छा उत्पन्न होती थी, और इस इच्छा की पूर्ति के लिए किसी अनकूल् अवसर की खोज में रहता था। दैवयोग से गुरुकुल आर्यनगर हिसार में अध्यापन कार्य के लिए नियुक्त हुआ और यहीं से प्रवचन अभ्यास का शुभारंभ किया। कभी-कभी अन्य स्थानों पर भी प्रवचन व्याख्यान देने का अवसर मिल जाता था। परन्तु जिस शैली से श्रोताओं के समक्ष विचारों की अभिव्यक्ति चाहता था वैसा नहीं कर पाता था। यहाँ (आर्यवन) रहते हुए, व्याख्यान अथवा प्रवचन कैसे देना चाहिए ? व्याख्यान से पूर्व सज्जा कैसी करनी चाहिए ? यदि कहीं कम समय मिले ऐसी स्थिति में विषय का प्रतिपादन कैसे करना चाहिए ? भाषा कैसी होनी चाहिए ? आदि आदि अनेक बातों का ज्ञान पाक्षिक प्रवचन के अभ्यास से और उसमें होने वाली उपरोक्त त्रुटियों का ज्ञान आचार्य श्री ज्ञानेश्वरजी द्वारा अच्छी तरह से हुआ। आचार्य श्री की कृपा से प्रवचन शैली में और वेदमन्त्रों की व्याख्या में पूर्वापेक्षा योग्यतानुसार अधिक सुधार का अनुभव करता हूँ।

६. ईश्वर प्राप्ति के प्रति कुछ अधिक झुकाव :- संध्या उपासना प्रत्येक वैदिक धर्मी को करनी चाहिए इसे मैं हृदय से स्वीकार

करता था। परन्तु साथ ही वैदिक धर्मी होने के कारण प्रायः खण्डन-मण्डन में अधिक प्रवृत्ति रहती थी। जीवन का मुख्य लक्ष्य केवल पांच इन्द्रियों का भोग करना ही है और इन भोगों को अधिकाधिक भोगने से मनुष्य सुखी और शान्त रह सकता है। भोग की शक्तियों को बढ़ाने के लिए ही योग करना चाहिए, ऐसी मेरी मानसिकता थी। पूज्य श्री स्वामीजी महाराज, आचार्यश्री ज्ञानेश्वरजी, तथा उपाध्यायश्री विवेक भूषण जी के आध्यात्मिक प्रवचनों ने जीवन में एक नई दिशा दी, जिससे पहले की अपेक्षा वर्त्तमान में ईश्वर के प्रति अधिक विश्वास श्रद्धा आस्था निष्ठा व अनुराग उत्पन्न हुआ अनुभव करता हूँ और विषय भोगों से पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, ऐसा समझने लगा हूँ।

७. स्तुति-प्रार्थना-उपासना का विशेष परिज्ञान :- किसी पवित्र पदार्थ को प्राप्त करने के लिए पहले पात्र को पवित्र करना पड़ता है। पात्र यदि अपवित्र है तब उसमें डाला गया पवित्र पदार्थ भी उस अपवित्र पात्र के संसर्ग से अपवित्र हो जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं। वैसे ही ईश्वर परम पवित्र है उसमें परम आनंद है, उसकी पवित्रता और आनंद को प्राप्त करने के लिए स्वंय को पवित्र बनाना पड़ता है। अपने अन्तःकरण, आत्मा को पवित्र किये बिना ईश्वर प्राप्ति तो दूर लौकिक व्यवहार भी ठीक प्रकार से नहीं चल सकता, और पवित्रता ईश्वर की उपासना से ही संभव है, तथा जो सन्त, महात्मा ईश्वरानुग्रह से अपने जीवन को पवित्र बना चुके हैं अथवा प्रयास कर रहे हैं उनके संपर्क से भी जीवन में सद्गुणों की प्राप्ति हो सकती

है । किन्तु सबसे श्रेष्ठ पूज्य, गुरु, आचार्य तो ईश्वर ही हो सकता है, क्योंकि इन सन्त महात्माओं ने भी उसी ईश्वर की शरण लेकर अपने को पवित्र बनाया है । पर यह ध्यान रखना चाहिए कि इन सन्तों के द्वारा ही हम ईश्वर तक पहुँच सकते हैं क्योंकि वे आरंभिक काल में मार्गदर्शक का काम करते हैं । यहाँ रहते हुए ईश्वरोपासना की विधि इसका फल, इसका दैनिक व्यवहार के साथ संबंध, यम-नियमों का सूक्ष्मता से पालन, ध्यान, समाधि की प्राप्ति में ईश्वर उपासना सहायक आदि-आदि विषयों में ज्ञान प्राप्त किया ।

कृतज्ञता : - पूज्य श्री स्वामी जी महाराज, आचर्य श्री ज्ञानेश्वर जी, उपाध्याय श्री विवेक भूषण जी के द्वारा दिए गए विशेष सहयोग से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति अनुराग व ईश्वर प्राप्ति का मुख्य लक्ष्य बना सका हूँ । एतदर्थ मैं इनका हृदय से आभारी हूँ । आर्यवन विकास क्षेत्र के अधिकारी, जिन्होंने भोजन, आवासादि की समुचित व्यवस्था की, और विद्यालय में चल रहे इस अद्वितीय कार्य के महत्त्व को समझा, इनके अतिरिक्त वे सभी सज्जन जो विद्यालय को प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में सहयोग दे रहे हैं, इन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी विद्यालय को पूर्ववत् सहयोग मिलता रहेगा ।

* * * *

मेरा संक्षिप्त परिचय

ब्र. श्रीनिवास

मेरा जन्म आन्ध्रप्रदेश के जिला-मेदक, मण्डल-कोन्डपाक के अन्तर्गत ग्राम-तिम्मारेड्डिपल्लि में (२१ मई १९६८) हुआ। पिता का नाम श्री स्वामय्या और माता का नाम श्रीमती कमलावती। घर में ताड़ वृक्षों से एक विशेष 'रस' निकाला जाता है, उसका विक्रय होता था, जिसे मातृभाषा में (कल्लु) नाम से कहा जाता है, साथ-२ कृषि कार्य भी होता था। घर में पौराणिक मान्यता थी। मेरा निवास व अध्ययन मुख्य रूप से हैदराबाद में हुआ। जब मैं ८ वीं कक्षा में पढ़ रहा था तब से आर्य समाज के विषय में सुना और समझ कर आर्य समाज से प्रभावित हुआ था। मैंने १२वीं कक्षा तक अध्ययन किया, तदुपरान्त रेडियो एवं टी. वी. का कोर्स कर रहा था। उसमें से रेडियो संबंधी प्रशिक्षण हुआ था व टी. वी. का अध्ययन प्रारम्भ हुआ ही था तब उसे छोड़ कर उद्योग करने के बहाने से घर से निकल पड़ा।

सर्वप्रथम मैंने उत्तरप्रदेश के जिला-बिजनौर के अन्तर्गत गंज दारानगर में स्थित केवलानन्द निगमागम आश्रम में लगभग १ वर्ष रह कर पूज्य स्वामी इन्द्रवेश जी से अष्टाध्यायी का स्मरण व संस्कृत भाषा का अभ्यास किया। तत्पश्चात् गाजियाबाद में स्थित संन्यासाश्रम में लगभग १ वर्ष रह कर पूज्य स्वामी चन्द्रवेश जी से प्रथमावृत्ति, आख्यातिक आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। फिर गुरुकुल कालवा में भी लगभग

१ वर्ष रहा वहाँ पूर्व पठित व्याकरण आदि की आवृत्ति करता रहा ।

तदुपरान्त मन में कुछ ऐसे भाव उभरे कि पर्वतों, गुफाओं में जाकर योगाभ्यास करना चाहिए। इस उद्देश्य को ले कर मैं व एक मित्र मिल कर लगभग दो मास पर्वतीय क्षेत्र में ऋषिकेश से ले कर बद्रीनाथ आदि अनेक स्थानों में घूमे, अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों (भोजनादि का अभाव, लोगों के द्वारा आतन्कवादी कहते हुए दूर भगाना आदि-२) के सामने आने पर हताश निराश हो कर उस विचार को छोड़ना पड़ा। फिर मैंने विचारा कि बिना विशेष ज्ञान के कुछ नहीं कर सकते । अतः और अध्ययन करना चाहिए । एतदर्थ पूज्य स्वामी सत्यपति जी महाराज से दिल्ली में मिला और पठनार्थ निवेदन किया उन्होंने पत्र लिख कर यहाँ (आर्यवन में) भेजा यहाँ मुझे ईश्वर की कृपा से प्रवेश मिल गया ।

उपलब्धियाँ

१. अनेक व्याकरण पढ़ने वालों के मन में यह भावना (भ्रान्ति) रहती है कि व्याकरण पढ़ने के बाद स्वयं दर्शनादि पढ़ लेंगे। ठीक ऐसी भावना (भ्रान्ति) व्याकरण पढ़ते समय मेरे मन में भी थी । परन्तु जब मैंने यहाँ दर्शनों का अध्ययन किया तो पता चला कि अलग-२ ग्रन्थों की परिभाषाएँ अलग-२ होती हैं जो केवल स्वयं ग्रन्थों को पढ़ने से ठीक-२ समझ में नहीं आतीं । महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भी व्याकरण पढ़ के दर्शनादि स्वयं पढ़ने का निर्देश नहीं किया है बल्कि गुरु के

पास पढ़ने का निर्देश किया है। स्वयं पढ़ सकने रूप भ्रान्ति का निवारण यहीं पर हुआ।

२. गुरुजनों एवं बीच-२ में पूज्य स्वामी जी महाराज के द्वारा गम्भीर सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयों पर प्रकाश डालते रहने से ईश्वरप्रणिधान, स्वस्वामी संबंध (=ममत्व), मनोनियन्त्रण, प्रलयावस्था बनाना, व्याप्य-व्यापक भाव बनाना, विवेक, वैराग्य व अभ्यास आदि अनेक विषयों को सैद्धान्तिक रूप से अच्छी प्रकार से समझ सका ऐसा अनुभव करता हूँ। साथ ही इसे व्यवहार में भी प्रयोग करने का अभ्यास किया व उसमें सफलता भी मिली है।

३. मैंने यहाँ यह जाना कि मेरे समस्त बाह्य एवं आन्तरिक काम, क्रोध, लोभादि से मिलने वाले दुःखों को न माता-पिता, न बन्धु, न मित्र, न अन्य कोई दूसरे व्यक्ति दूर करने में समर्थ है, केवल ईश्वर ही समर्थ है अतः शीघ्र ईश्वर प्राप्ति हो जाय एतदर्थ आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प लेने में और आगे योग-दर्शनोक्त वैराग्य होने पर संन्यास लेने का निर्णय यहाँ कर सका।

४. आन्तरिक दोषों को जानने हेतु व्यक्ति को अन्तःमुख होना पड़ता है। अपनी समस्त शक्तियों को बाहर की ओर लगाये रखने से अन्दर क्या उथल-पुथल हो रही है यह जानना असंभव है। मैं अन्तःमुख हो कर अपने दोषों को समझने में समर्थ हुआ। अपने दोषों को गुरुजनों व अन्यों से सुनने में व उनको दूर करने में भी पर्याप्त समर्थ हुआ।

५. आध्यात्मिक मार्ग में चलते हुए अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती हैं । उन बाधाओं का निवारण न जानने के कारण व्यक्ति हताश-निराश हो कर आध्यात्मिक मार्ग को ही छोड़ बैठता है । मेरा सौभाग्य है कि इस मार्ग में आने वाले बाधकों को एवं साधकों को ठीक प्रकार से जान व समझ सका । कब किस परिस्थिति में कौन सी बाधा के उपस्थित होने पर उसका क्या समाधान हो सकता है इसका भी परिज्ञान मुझे यहीं पर जानने को मिला ।

६. मैंने अनेक गुरुकुलों में रह कर व भ्रमण कर एवं अनेक संन्यासियों, उपदेशकों से बातचीत के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि मानव जीवन का परम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति ही है । इसी के लिए मानव जीवन मिला है व इसी से मनुष्य कृतकृत्य होता है । ईश्वर प्राप्ति के लिए मुख्य रूपेण पुरुषार्थ करना चाहिए ऐसा कहने व उपदेश देने वाले तथा स्वयं भी इसी के लिए पुरुषार्थ करने वाले गुरुजनों का सान्निध्य यहीं पर प्राप्त हुआ । जहाँ भी ईश्वर प्राप्ति को मुख्य मान कर चलने वाले हों उन्हीं के सान्निध्य में रह कर शीघ्र ईश्वर तक पहुँचना चाहिए ऐसा निश्चय मैं यहीं पर कर सका ।

७. मन के विषय में जो प्रायः भ्रान्तियाँ रहती हैं कि मन नहीं मानता, मुझे बलात् ले जा रहा है आदि आदि इन सभी भ्रान्तियों का निवारण भी हुआ है । मन को एक विषय में लगाने का प्रयास करने से यह निश्चय हुआ कि मन जड़ है, चलाने से ही चलता है । यह निश्चय होने पर मन को रोकने में भी पर्याप्त सफलता मिली है ।

८. मैं अपने आप को सौभाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि योग विद्या को जानने वाले भारत में मेरा जन्म हुआ, उसमें सच्चे योग विद्या का प्रतिपादन करने वाले आर्यसमाज के साथ मेरा संपर्क हुआ, उसमें भी योग विद्या को धरती पर उतारने वाले पूज्य स्वामी सत्यपति जी महाराज का सान्निध्य मिला है। इससे ऐसा अनुभव करता हूँ कि विषयवासनाओं के चक्कर से दूर होने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ और इससे मुझे विषय वासनाओं के प्रबल आकर्षण से बचने में बहुत सहायता मिली तथा यह भी प्रबल आत्मविश्वास हो गया है कि इस विधि से चलते रहने पर अगले कुछ वर्षों में अपनी स्थिति बहुत ऊँची बना सकूँगा।

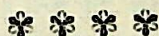
९. अब तक मैंने (लगभग सवा तीन वर्ष) में ईश, केन, कठ आदि ग्यारह उपनिषदों सहित योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय और वेदान्त इन पाञ्च दर्शनों का (संस्कृत भाष्यों सहित) अध्ययन किया और पाञ्चों दर्शनों के मूल-सूत्रों के स्मरण पूर्वक लिखित व़ मौखिक परिक्षाएँ भी दीं। ईश्वर की कृपा से इन दर्शनों में योग्यता भी बनी है। गुरुजनों की कृपा व आदेशानुसार मैंने इन पाञ्चों दर्शनों का (पूरे, आधे आदि के रूप में) अध्यापन भी किया इससे मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि आगे इन पाञ्चों दर्शनों को वैदिक सिद्धान्त के अनुसार समन्वयात्मक और त्रैतवाद-परक अन्यों को पढ़ा सकने में समर्थ हूँ।

१०. उपनिषदों व दर्शनों के अतिरिक्त यजुर्वेद के ९ अध्यायों का अध्ययन किया और अनेक वेदमन्त्रों (आर्याभिविनय आदि) का शंका समाधान पूर्वक स्वाध्याय किया। महर्षि दयानन्द

सरस्वती जी के मन्तव्यों को अच्छी प्रकार समझने का प्रयास यहीं पर कर सका ।

११. यहाँ आने से पहले के जीवन में व इस समय के जीवन में बहुत बड़ा अन्तर अनुभव कर रहा हूँ इसके अनेक कारण हैं जैसे कि ईश्वर के प्रति श्रद्धा-प्रेम में वृद्धि, उत्तम विद्या की प्राप्ति व परोपकार आदि उच्च भावनाओं का उभरना । यह सब मैंने यहीं पर गुरुजनों से सीखा समझा, यह मेरे आगे के जीवन में बहुत बड़ी सफलता का कारण बन सकेगा ।

कृतज्ञता अब तक मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया है, वह ईश्वर की अनुकम्पा, पूज्य स्वामी जी महाराज व गुरुजनों की कृपा, साथी ब्रह्मचारियों द्वारा प्राप्त विभिन्न क्षेत्रों के सहयोग से और आर्यवन विकास फार्म के सभी सदस्यों, हैदराबाद के महानुभावों एवं आर्यभद्र पुरुषों, माताओं व आर्य समाज के सहयोग से प्राप्त किया है । अतः मैं सभी महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ ।



मेरा संक्षिप्त परिचय

ब्र. वेणुगोपाल (सत्यबोधार्यः)

मैं, ब्र. वेणुगोपाल (सत्यबोधार्यः) सुपुत्र श्री गोपालन नायर तथा श्रीमती रुग्मणी, केरल प्रान्त के एरणाकुलम् मण्डल में कणयन्नूर नामक गाँव के एक दरिद्र परिवार में १२ मई सन् १९६३ (यह जन्म तिथि स्कूल प्रमाण-पत्र के आधार पर है, वास्तविक तिथि मैं नहीं जानता हूँ) जन्म लिया। १०वीं तक की पढ़ाई सेन्ट मेरीस हाईस्कूल, तलकोड में की। तदनन्तर सरकारी आई.टी.आई., एट्टुमानूर में दो साल इन्स्ट्रुमेन्ट मेकेनिक पढ़ा, फिर आर्थिक समस्याओं के कारण पढ़ाई छोड़ दी। फिर सात साल बाद संस्कृत पढ़ने की इच्छा हुई और एक सरकारी कॉलेज में प्रवेश पाकर बी.ए. तक वहाँ पढ़ा। कॉलेज से ही मैं आर.एस.एस. का कार्यकर्त्ता बना तथा लगभग आठ साल उसमें काम किया प्रचारक भी बना।

सन् १९८९ ई. के अन्त में द.यो. महाविद्यालय के पूर्व शिक्षार्थी तथा कर्णाटक प्रान्त के निवासी ब्र. ब्रह्मदेव जी का प्रवचन सुना और आर्यसमाज की ओर ध्यान दिया। कुछ दिन बाद केरल के कार्यकर्त्ता श्री आचार्य नरेन्द्र भूषण जी से परिचय हुआ और उनके निर्देशानुसार तथा मेरे मित्र श्री कृष्णकुमार जी की निरन्तर प्रेरणा के कारण मैंने पढ़ाई के लिए केरल छोड़ा। ९ मई १९९२ को मैं बम्बई पहुंचा वहाँ पर श्री दिलीप जी सुपुत्रश्री विश्रामभाई वेलाणी मिले उन्होंने मुझे दर्शन-योग महाविद्यालय में भेजा।

यहां मैं १२ मई, १९९२ को पहुँचा और प्रारम्भ में ३ महीने के लिए अस्थाई प्रवेश तथा बाद में स्थाई प्रवेश मिला। यहाँ मैंने लगभग ३ वर्ष पढ़ाई तथा योगाभ्यास किया।

उपलब्धियाँ

सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त संस्कृत भाष्य सहित, ११ उपनिषद्, यजुर्वेद के चुने हुए ९ अध्याय, क्रियात्मक योग तथा आर्य सिद्धांतों का अध्ययन किया।

विद्यालय आते समय मैं अपने को परम-श्रेष्ठ मानता था परन्तु यहाँ का अध्ययन, स्वामी जी तथा आचार्य जी के प्रवचन आदि से मुझे पता चला कि अपने को श्रेष्ठ मानना सबसे बड़ी मूर्खता है।

आत्मनिरीक्षण, निदिध्यासन तथा सोचने की योगात्मक शैली को सीखा तथा स्वयं दण्ड लेने का अभ्यास किया।

संसार में दुःख देखने का तथा संसार को अनित्य देखने का अभ्यास किया, परन्तु व्यक्तिगत कमियों के कारण सफलता थोड़ी मात्रा में मिली।

मान-अपमान को सहने का, सत्य बोलने का तथा राग-द्वेष रहित होकर व्यवहार करने का अभ्यास किया और उसमें बहुत सफलता मिली।

स्वास्थ्य में बहुत लाभ हुआ। विद्यालय में आते समय अपनी अव्यवस्थित, असंयमपूर्ण दिनचर्या के कारण मैं रोगी था, परन्तु विद्यालय की आदर्श दिनचर्या तथा सात्त्विक भोजन

के कारण स्वास्थ्य में वृद्धि हुई तथा रोगों से बहुत दूर हुआ।

विद्यालय की दिनचर्या आदर्श होते हुए भी मैंने अनेक बार घर भागने का प्रयत्न किया। आदरणीय श्री आचार्य जी की निरन्तर प्रेरणा तथा समाश्वासन को पाकर मैं रुक गया। प्रारम्भ काल में हिन्दी नहीं जानता था परन्तु आचार्य जी के प्रयत्न और प्रेरणा से मेरी स्थिति में बहुत सुधार हुआ। पूज्य स्वामी जी महाराज के बोलने की रीति, ऋषियों के प्रति उनकी श्रद्धा आदि ने बहुत प्रभावित किया। मैंने अनेक बार विद्यालय के नियमों को कभी अज्ञानवशात्, कभी संस्कार के कारण तोड़ा परन्तु धैर्य पूर्वक तथा प्रेमपूर्वक उपदेश से आचार्य जी ने मुझे समझाया। कभी भी आचार्य जी को रुष्ट होते हुए मैंने देखा नहीं, उनकी यह मानसिक स्थिति योग का फल है, ऐसा मैं समझता हूँ। उपाध्याय जी की पढ़ाने की शैली अनुपम है और शंका समाधान की भी।

समान आवास, वस्त्र, भोजन, पुस्तक, आच्छादन आदि केवल इस विद्यालय की विशेषता है ऐसा मैं मानता हूँ। कभी भी एक भी पक्षपात युक्त व्यवहार गुरुजनों से नहीं देखा। श्री आचार्य जी बीच-बीच में हमसे पूछते थे कि उनसे कोई पक्षपात युक्त व्यवहार हुआ हो तो बतायें। भोजन के विषय में कोई कमी कभी अनुभव की ही नहीं।

मेरे जीवन में जो जो गुण हैं वे दर्शनयोग महाविद्यालय से प्राप्त हुए हैं। उसके लिए स्वामी जी, आचार्य जी तथा उपाध्याय जी का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ।

पढ़ते समय घर की आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी, आचार्य नरेन्द्र भूषण जी, श्री. दिलीप जी तथा आर्य समाज दिल्ली, नया बास के कार्यकर्ताओं ने महती सहायता की। आदरणीय आचार्य जी ने कई बार अपनी कृपा दिखाई। इस के लिए मैं आभार कैसे प्रकट करूँ! आर्यवन के सारे ट्रस्टी महानुभावों को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे और अन्य ब्रह्मचारियों को वहाँ आकर पढ़ाई करने के लिए अपनी ओर से व्यवस्था कर रखी है।

सन् १९९५ अप्रैल २१ को फिर लौटने की वाणी देकर विद्यालय से केरल आया। परन्तु मैंने पक्षपात तथा कुसंस्कार के कारण आचार्य जी तथा स्वामी जी के हितवचनों का तिरस्कार करते हुए वचन भङ्ग किया। फिर भी आचार्य जी ने अपने प्रेम पूर्वक पत्रों के द्वारा आदर्श पर चलने के लिए प्रेरणा दी, कुछ भी विद्वेष नहीं किया, न कठोर वाणी कही। इस ऋण से मैं कैसे मुक्ति पाऊँ?

परम-पिता परमात्मा को धन्यवाद देता हुआ तथा उनसे ज्ञान और बल के लिए प्रार्थना करता हुआ इस लेख को समाप्त करता हूँ। इति ओ३म्।

❋ ❋ ❋ ❋

मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय व उपलब्धियाँ

वानप्रस्थी 'साधक'

मेरा पूर्व नाम गुरुदयाल आर्य । माता-पिता तथा सम्बन्धित परिवार के सदस्यों ने जो बताया उसके अनुसार मेरा जन्म नवम्बर १९२८ में हुआ ।

पिता का नाम श्री प्रभात सिंह नम्बरदार तथा व्यवसाय कृषि रहा हैं और राज़स्थान के मूल निवासी हैं ।

ग्रामवासी होने के कारण तथा आर्थिक स्थिति विशेष अच्छी न होने के कारण मेरी प्रारम्भिक शिक्षा ग्रामीण शाला में हुई । अपने गांव से ३ किलोमीटर दूर शाहजहांनपुर नामक ग्राम में पैदल ही पढ़ने के लिये जाया करता था । गांव की पाठ शाला में मैंने आठवीं कक्षा उत्तीर्ण की और फिर सेना में भर्ती हो गया । वहाँ जाकर भी मैंने शिक्षा को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया । वहाँ पर अध्ययन की अच्छी व्यवस्था थी अतः सैनिक क्रियाकलापों के साथ साथ मैंने "आर्मी स्पेशल सर्टिफिकेट आफ एजुकेशन" जो कि अन्य बोर्ड की मैट्रिक के समतुल्य है पास की । पश्चात् पंजाब यूनिवर्सिटी से प्रीयूनिवर्सिटी तक शिक्षा प्राप्त की ।

सेना में मेरा मुख्य विषय तकनीकी था । वाहनों को ठीक करनेके अभ्यास से मुझे इस विषय में रुचि और भी बढ़ गई और मैंने लन्दन की बम्बई शाखा से ऑटोमोबाइल इन्जिनियरिंग पास किया । अब अपने को सेना में एक उच्चाधिकारी बनने की योग्यता वाला जानकर कमिशन प्राप्त करने के लिये आवेदन किया । स्वीकृति भी मिल गई किन्तु

अनेक प्रयत्न करने पर भी मैं कमिशन प्राप्त न कर सका। उसमें एक कारण आयु का अधिक हो जाना भी रहा। घर पर कृषि कार्यों में शिथिलता को देखकर पेन्शन के लिये आवेदन किया और सन् १९६९ में सेना से निवृत्ति हो गई। घर पर आकर मुख्य रूप से कृषि और गौण रूप से व्यापार करता रहा।

पूर्व के कुछ संस्कार और धार्मिक व्यक्तियों की संगति के कारण कुछ स्वाध्याय करने लगा। अब तक मैं किसी मत सम्प्रदाय से जुड़ा नहीं था। स्वामी हरीदास जी की कृपा से मुझे सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक स्वाध्याय के लिये प्राप्त हो गई। उसने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया और अपने को शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ा हुआ देखने लगा किन्तु पुत्र को अच्छी विद्या देने के लिये गुरुकुल झज्जर में प्रवेश करा दिया और स्वयं भी गुरुकुल में आने जाने लगा। वहाँ से स्वामी ओमानन्द जी का साहित्य तथा अन्य पुस्तकें लाकर स्वाध्याय करता रहा।

व्यापार कार्य में कुछ वृद्धि हुई। मेरे दो ट्रक उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश में कोयले की खानों में चलते थे। वहाँ पर मैं स्वयं भी एकभूतपूर्व सैनिकों की कम्पनी में एक अच्छे प्रतिष्ठित पद पर कार्य करने लगा। वहाँ कुछ वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ और सब कार्यों को छोड़ स्वामी धर्मानन्द जी के गुरुकुल आमसेना उड़ीसा में आकर रहने लगा। स्वामी जी ने मेरे विचारों को जाना और मुझे योग मार्ग पर जो कि मेरा रोचक विषय था उसी पर चलने की प्रेरणा दी इस कारण से मैं स्वामी धर्मानन्द जी का बहुत ही आभारी हूँ। उन्होंने मेरा सम्पर्क स्वामी

सत्यपति जी से कराया और मुझे तपोवन देहरादून में होने वाले योग शिविर में भाग लेने के लिये भेज दिया।

स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक मेरे वर्तमान के गुरु हैं उस शिविर में मैंने प्रथम बार ही भाग लिया था। एक मास तक शिविर में भाग लिया और उन्हीं के शिष्य आचार्य आनन्द प्रकाश जी से तपोवन में एक वर्ष तक ४ दर्शनों का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। इस शिविर के समाप्त होने पर स्वामीजी ने मेरी भावी योजना जाननी चाही तो मैनें यही कहा कि मेरी योग्यता अभी कुछ भी नहीं बनी है जो कि मैं सामाजिक कार्य कर सकूँ तथा स्वतंत्र रूप से जीवन निर्माण कर सकूँ। तब उन्होंने मेरे विचारों को समझ और अधिक ज्ञान वृद्धि के लिये दर्शन योग महाविद्यालय में प्रवेश दे दिया और साथ ही व्यवस्था कार्य को भी देखने के लिये कहा। तब से मैं यहाँ पर लगभग चार वर्ष से ब्रह्मचारियों की तपस्वी दिनचर्या में उनके साथ चल रहा हूँ। मेरा सौभाग्य है कि इस ऋषियों जैसी दिनचर्या में रहकर विद्या पढ़ रहा हूँ और साथ ही सेवा कार्य का भी अवसर प्राप्त है।

मई १९९४ में आर्य वन विकास फार्म के वार्षिक उत्सव पर ईश्वर की महती कृपा से मैंने स्वामीजी महाराज से वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण की और उसी समय स्वामीजी ने मुझे दर्शन विशारद की उपाधि दे दी और फिर एक वर्ष के बाद दर्शनाचार्य की उपाधि प्रदान की, क्योंकि मैंने ५ दर्शनों की लिखित एवं मौखिक परिक्षायें दी थीं। यद्यपि मेरी इच्छा उपाधि लेने की नहीं थी फिर भी उन्होंने उपाधि दी उसके पीछे उनका कोई मन्तव्य रहा होगा। दर्शनों के अध्ययन के साथ साथ ग्यारह

उपनिषद् तथा यजुर्वेद के कुछ अध्याय भी गुरुमुख से पढ़े। साथ ही क्रियात्मक योग प्रशिक्षण और व्याख्यान प्रशिक्षण भी प्राप्त किया।

इस ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति में मुख्य रूप से आचार्य ज्ञानेश्वर जी की कृपा रही है। उन्होंने व्यवस्था कार्यों का भार मेरे ऊपर अधिक नहीं होने दिया, उन्होंने मुझे पुत्र की तरह पाला और एक आदर्श गुरु की तरह शिक्षा दी और मेरा सम्मान वे सदा पिता के तुल्य करते रहे। मैंने अज्ञान से तथा पूर्व संस्कारों के कारण अनेक बार उनके साथ अनुचित व्यवहार भी किया किन्तु वे सरलता से सहन करते रहे। मैं उनकी इस नम्रता, सहनशीलता दूरदर्शिता, तथा उदारता से काफी प्रभावित हूँ।

नवम्बर १९९१ से अगस्त १९९५ तक की उपलब्धियाँ तथा अनुभव निम्नलिखित हैं।

शारीरिक उपलधियाँ – इस अवधि में केवल दो बार सामान्य रूप से प्रतिश्याय मात्र हुआ, वह भी मेरी असावधानी के कारण। कभी कोई रोग न होने का कारण है खुले अरण्य में निवास स्थान, उत्तम जलवायु, शुद्ध सात्त्विक आहार तथा नियमित दिनचर्या और दोनों समय व्यायाम का विधान।

बौद्धिक उन्नति – प्रारंभ में तो मैं सामान्य विषय को बार बार सुनने पर भी समझ नहीं पाता था किन्तु कालान्तर में ऋषियों के सूक्ष्म तथा गम्भीर सिद्धान्तों को सरलता से समझने लगा, इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के निम्नलिखित कारण हैं–

अपरिग्रह अभ्यास : अनावश्यक क्रिया कलाप, अनावश्यक वार्तालाप पर प्रतिबन्ध का होना।



उपासना – दोनों समय शान्तचित्त होकर ईश्वर उपासना करना। **क्रियात्मक योग**-प्रतिदिन योग विषयक चर्चा तथा क्रियात्मक अभ्यास **यम नियम अनुष्ठान** – सम्पूर्ण दिन व्यवहार काल में सावधानी से यम नियमों का पालन करना।

वातावरण – योग्य गुरु और बुद्धिमान् ब्रह्मचारियों के साथ निवास तथा तर्क और प्रमाणों से शंका समाधान करना।

स्वास्थ्य – अच्छा स्वास्थ्य होने के कारण तथा ब्रह्मचर्य पालन से बुद्धि का विकास हुआ।

शैक्षणिक उपलब्धियाँ :– संस्कृत भाषा का अध्ययन पूर्व में थोड़ा भी नहीं था। यहाँ आकर संस्कृत भाषा का ज्ञान कर दर्शनों को संस्कृत भाषा में पढ़ने की योग्यता प्राप्त की। योग सांख्य, वैशेषिक, न्याय और वेदान्त दर्शन को पढ़ा, लिखित मौखिक परीक्षायें दी और अन्यों को पढ़ाने का सामर्थ्य प्राप्त किया। ग्यारह उपनिषद् और यजुर्वेद के कुछ अध्यायों का भी अध्ययन किया।

क्रियात्मक उपलब्धियाँ – योग तथा ध्यान सम्बन्धी शिविरों का आयोजन करने का कुछ ज्ञान, वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर शंका समाधान और प्रवचन करने का अभ्यास किया।

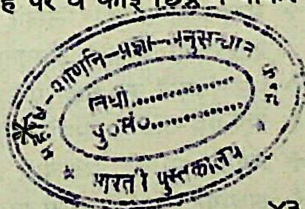
मनोनियंत्रण – मन के स्वरूप को समझा, किसी विषय में युक्त मन को उस विषय से हटाकर इच्छित विषय में लगा लेना। जब से यह सामर्थ्य हुआ है तब से काफी मात्रा में क्लेशों से छुटकारा हुआ है। ईश्वर प्रेम में वृद्धि हुई जिससे उपासना का स्तर ऊँचा उठा है। आध्यात्मिकता में वृद्धि होने से लौकिक पदार्थों की बड़ी से बड़ी हानि हो जाने पर भी कष्ट का अनुभव न होना, निराशा न आना इत्यादि।

अपने संस्कारों को समझने की भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हुई। वे कैसे चित्त पर पड़ते हैं और कैसे व्यक्ति को विषयों की ओर प्रेरित करते हैं तथा उन्हें तनु और नाश करने की विधि को समझा जो कि आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अब यह निर्णय किया है कि शब्द ज्ञान की आवृत्ति करते हुए प्राप्त ज्ञान के मनन, निदिध्यासन पर विशेष बल लगाकर शीघ्र संन्यास की योग्यता प्राप्त करूँ। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये स्वामी जी महाराज की संगति अपेक्षित है। मेरी यह आकांक्षा गुरुदेव ने समझी और मुझे अपने साथ रखने की अनुमति दे दी। आचार्य जी ने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया जबकि मेरे जाने से उनके कार्यों में बहुत वृद्धि हो जायगी किन्तु मेरा हित जान कर उन्होंने स्वार्थ नहीं देखा। मैं उनका आभारी हूँ।

अध्यात्म विद्या को बताने सिखाने वालों की संसार में कमी नहीं है। पर मुझे इस विद्या का श्रेष्ठतम केन्द्र दर्शन योग महाविद्यालय ही समझ में आया। होंगे और भी पर वे मेरे ज्ञान से बाहर हैं। मेरी दृष्टि में तो यह एक अद्वितीय स्थल है क्योंकि यहाँ के आचार्य तथा ब्रह्मचारी वेदोक्त रीति से बाहर कार्य नहीं करते, अनुशासन में ढिलाई न आये सदा यही प्रयत्न रहता है। अनेकों परीक्षक यहाँ पर आते हैं पर वे कोई छिद्र न पाकर प्रशंसा ही करते हैं।

* * * *



दर्शन योग महाविद्यालय

उद्देश्य

(१) महर्षि पतंजलि प्रणीत अष्टाङ्गयोग की पद्धति से उच्च स्तर के योग-प्रशिक्षकों को तैयार करना, जो देश-विदेश में प्रचलित मिथ्यायोग के स्थान पर सत्य योग का प्रशिक्षण दे सकें ।

(२) विशिष्ट योग्यता वाले वैदिक-दार्शनिक विद्वानों का निर्माण करना जो सार्वभौमिक युक्तियुक्त, अकाट्य, वैज्ञानिक, शाश्वत, वैदिक सिद्धातों का, बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष प्रभावपूर्ण शैली से प्रतिपादन करके, उनकी नास्तिकता मिटाकर उन्हें वैदिक धर्मानुयायी बना सकें ।

(३) निष्काम भावना से युक्त, मनसा-वाचा-कर्मणा एक होकर तन, मन और धन से सम्पूर्ण जीवन की आहुति देने वाले व्यक्तियों का निर्माण करना, जो अपनी और संसार की अविद्या, अधर्म तथा दुःखों का विनाश करके उसके स्थान पर विद्या, धर्म तथा आनन्द की स्थापना कर सकें ।

प्रवेश के लिए योग्यता

- प्रवेश केवल ब्रह्मचारियों के लिए (आजीवन ब्रह्मचारियों को प्राथमिकता),
- समर्पित भावना से युक्त होकर पूर्ण अनुशासन में रहना,
- वैदिक सिद्धान्तों में निष्ठा होना,
- योगाभ्यास तथा दर्शनों के अध्ययन में रुचि होना,
- संस्कृत भाषा पढ़ने, लिखने, बोलने में समर्थ होना (व्याकरणाचार्य, शास्त्री या समकक्ष योग्यता वालों को प्राथमिकता),
- यम-नियमों का श्रद्धा पूर्वक पालन करना,
- निष्काम भाव से समाज-राष्ट्र की सेवा का संकल्प होना,
- त्यागी, तपस्वी, सदाचारी होना,
- अध्ययन काल में घर से या स्वजनों से सांसारिक सम्बन्ध न होना,
- अवस्था १८ वर्ष से अधिक होना,



विशेष

प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों का तीन मास बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक परीक्षण किया जाता है। ब्रह्मचारी के योग्य सिद्ध होने पर ही स्थाई प्रवेश दिया जाता है।

संस्थान की विशेषताएँ

(१) प्रत्येक ब्रह्मचारी को पक्षपात रहित (=समान रूप से) भोजन, वस्त्र, दूध, घी, फल, पुस्तक, आसन आदि सभी वस्तुएँ निःशुल्क प्राप्त हैं।

(२) प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे व्यक्तिगत योगाभ्यास (ध्यान) करना अनिवार्य है।

(३) प्रतिदिन क्रियात्मक योग प्रशिक्षण, (जिसमें विवेक, वैराग्य, अभ्यास, ईश्वरप्रणिधान, मनोनियंत्रण, ध्यान, समाधि, तथा स्वस्वामिसम्बन्ध = (ममत्त्व) को हटाना, इत्यादि आध्यात्मिक सूक्ष्म विषयों पर विस्तार से विवेचन) किया जाता है।

(४) यम-नियमों का मनसा, वाचा, कर्मणा, सूक्ष्मता से पालन कराया जाता है।

(५) दिन में ६ घण्टे का मौन रहता है, (जिसमें ध्यान-स्वाध्याय आदि सम्मिलित है)।

(६) रात्रि में आत्मनिरीक्षण होता है। (जिसमें दिन भर के दोषों का सबके समक्ष ज्ञापन तथा भविष्य में सुधार हेतु प्रयत्न कियाा जाता है)।

(७) वार्तालाप का माध्यम संस्कृत भाषा है।

(८) प्रतिदिन यज्ञ, वेद पाठ तथा वेदमन्त्र का स्वाध्याय होता है।

(९) सप्ताह में एक बार आसन-प्रशिक्षण तथा पक्ष (=१५ दिन) में एक बार व्याख्यान प्रशिक्षण होता है।

(१०) दर्शनों की लिखित एवं मौखिक परीक्षाएँ ली जाती हैं।

(११) प्रातः काल ४ बजे से रात्रि ९-३० बजे तक आदर्श एवं व्यस्त दिनचर्या है।

दिनचर्या

समय				कार्यक्रम
१.	प्रातः	४	बजे	जागरण, मन्त्रोच्चारण
२.	४.००	से	५.३०	शौच, व्यायाम, स्नान
३.	५.३०	से	६.३०	व्यक्तिगत उपासना (ध्यान)
४.	७.००	से	७.४५	यज्ञ, वेदपाठ, स्वाध्याय
५.	७.४५	से	८.००	प्रातराश (नास्ता)
६.	८.३०	से	९.००	क्रियात्मक योग पशिक्षण
७.	९.००	से	११.३०	दर्शन आदि अध्ययन
८.	११.३०	से	१२.००	भोजन
९.	१२.३०	से	१.३०	विश्राम
१०.	१.३०	से	२.३०	स्वाध्याय
११.	२.३०	से	४.००	अध्ययन, अध्यापन
१२.	४.१५	से	५.३०	शौच, व्यायाम, भ्रमण, स्नान
१३.	५.३०	से	६.३०	व्यक्तिगत उपासना (ध्यान)
१४.	६.३०	से	७.००	भोजन
१५.	८.००	से	८.१५	दुग्धपान
१६.	८.१५	से	८.३०	भ्रमण (श्लोक-मन्त्र गायन)
१७.	८.३०	से	९.००	आत्म-निरीक्षण
१८.	९.००	से	९.३०	स्वाध्याय, आत्मचिंतन
१९.	९.३०	से	४.००	शयन

मौन के समय

प्रातः	दोपहर	सायम्
४.०० से ७.००	१२.३० से २.३०	५.३० से ६.३०

* * * * *

